

हड़प्पा की अपेक्षा मोहन जोदड़ो के जीवन अधिक विशाल थे। जिस समय मिस्र निवासी पक्की ईंटों के प्रयोग से दानमिद्ध थे और मैसीपोटेमिया में यह प्रयोग अल्प मात्रा में होता था। उसी समय सिन्धु घाटी के लोग कच्ची और पक्की ईंटों का प्रयोग लड़ी कुशलता से करते थे। बाद से रसा के लिए कभी-कभी मकान ऊंचे चबुतरे पर बनाये जाते थे। दो मंजिले मकानों के नीचे गहरे होते थे। दीवारों पर प्लास्टर करने की प्रथा थी। छतों के ऊपर का पानी निकालने के लिए मिट्टी अथवा लकड़ी के परनाले बने होते थे। प्रत्येक घर में आंगन, पाकशाला, स्नानगृह, शौचगृह और कुँए की व्यवस्था थी। स्नानागारों की फर्श पक्की ईंटों से पाटे होते थे। दूसरी मंजिल पर कहीं-कहीं शौच गृह मिले हैं। सिन्धु घाटी में दो प्रकार के मकान थे धनिकों के और मजदूरों के। मोहन जोदड़ो में एक किनारे पर 16 मकानों के अवशेष मिले हैं। आठ-आठ मकान दो समानान्तर पंक्तियों में हैं। हड़प्पा में किले के उतर नीचे की ओर मजदूरों का एक मुहल्ला बसा था वहाँ भी चौदह ऐसे मकान मिले हैं जो सात-सात की दो पंक्तियों में बने हैं। यह मुहल्ला सम्भवतः मजदूरों का था।

मध्य इमारतों का आभाव नहीं था। ये इमारतें सम्भवतः सार्वजनिक और राजकीय थी। हड़प्पा में ऐसी इमारतें थी जो मोहन जोदड़ो में भी हैं। हड़प्पा में भंडागार मिले हैं, जिनका प्रमुख प्रवेश द्वार नदी की ओर है ऐसा प्रतिष्ठित होता है कि नदी मार्गों से ही भंडागारों की सामग्री आती-जाती होगी। मोहन जोदड़ो में भी वन्य इमारत होने का प्रमाण मिलता है। सम्भव है इस जीवन का प्रयोग किसी सार्वजनिक काम के लिए होता रहा हो। इसके दक्षिण ही एक विशाल खुम्भे वाला वर्गाकार दलान है। कुछ लोगों के मतानुसार वहाँ राजमहल के अवशेष भी पाये गये हैं। स्नानागार भी अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ किसी भी कमरे में वेपदंगी की

गुंजावश नहीं थी। अनेक विद्वानों का मत है कि उपरी मंजिल पर बने हुए कमरों में पुजारी रहते थे जो शुभ मुहूर्तों और पर्वों पर नीचे उतरकर नहते थे। इसी के समीप एक अण्डाकार के होने का भी प्रमाण मिला है। स्नानागार के उत्तर पूर्व एक अन्य भवन का अवशेष मिला है जिसे कुछ विद्वान राजप्रसाद के होने का भी अनुमान लगाते हैं। स्नानगुंड के समीप एक ^{सांकेतिक} सामूहिक भवन भी वा दीक्षित महोदय इसे धर्मस्थान मानते हैं।

हड़प्पा के सामान्य आवास क्षेत्र के दक्षिण में एक ऐसा कनिष्ठान स्थित है जिसे 'समाधि आर-37' नाम दिया गया है। अन्नागार का भवन मोहनजोदड़ों के बृहद भवनों में एक है। चन्द्रद्वी में सैन्धव कालीन संस्कृति के अविशिष्ट प्राक हड़प्पा संस्कृति 'मूकर संस्कृति एवं मांगर संस्कृति के अवशेष मिले हैं। लोथल का हड़प्पा कालीन बन्दरगाह सर्वप्रमुख है। लोथल में गढ़ी और नगर दोनों एक ही रक्षा प्राचीर से घिरे हैं।

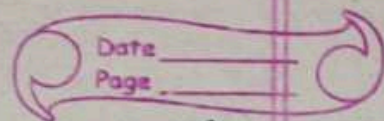
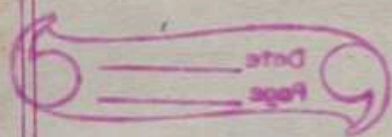
इन सभी प्राप्त अवशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता में एक विकसित नगरपालिका प्रशासन जरूर रहा होगा तथा सिन्धु सभ्यता के लोग भवन निर्माण कला में पूर्ण रूपेण दक्ष थे। भवन निर्माण कला में उपयोगिता और स्वाधित्व पर विशेष ध्यान दिया जाता था। योजना के दृष्टिकोण से यह सभ्यता अद्वितीय थी तथा भवन निर्माण की कला सिन्धु घाटी में चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। सुमेर में जहाँ नागरिक सभ्यता का प्रारंभ हुआ वहाँ भी इतनी उत्कृष्ट नगर-योजना देखने की नहीं मिलती है।

दिनांक - 09-02-2024

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर० बी० जी० आर० कॉलेज, महाराजगंज

T.D.C. PART-II, HISTORY (HON), PAPER-III

"सिंध पर अरब आक्रमण एक घटना मात्र थी" इस कथन की समीक्षा करें (शॉर्ट भाग)



इस्लाम की कट्टरता — इस्लाम धर्म के प्रचारक तलवार की ताकत से आगे बढ़ते थे। कासिम ने हजारों हिंदुओं का कल्लेआम करवाया जिन्होंने इस्लाम धर्म अंगीकार करने से इनकार किया था। ऐसे निर्दयी विजेताओं को सभी हेय दृष्टि से देखते थे। अतः उसका शासन-प्रबन्ध कभी स्थायी नहीं हो सकता था।

सुहृद् शासन का अभाव — अरब और सिंध के बीच काफी दूरी थी। आवागमन के तीव्र साधनों के अभाव में सिंध में सुहृद् शासन स्थापित करना कठिन हो गया। बगदाद में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण सिंध के साथ दृढ़ संबंध स्थापित किया जा सका। अरब लोग अन्य मुसलमानों की तरह विजेता ही थे। उनमें शासन करने की योग्यता नहीं थी। उन्होंने सिंध में एक शिथिल और अस्थायी शासन व्यवस्था की नींव डाली। वे बहुसंख्यक हिंदुओं को अपनी ओर मिलाने में असफल रहे। अतः उनकी शासन व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं टिक सकी।

तुर्कों का उत्कर्ष — तुर्कों के उत्कर्ष ने अरब साम्राज्य को राहु की तरह गस लिया। खलीफाओं का प्रभुत्व जाता रहा। वे केवल धर्म गुरु ही बनकर रह गये। उनका संबंध सिंध से टूट गया। 844 ई० में सिंध के सूबेदार खलीफा के नियंत्रण से स्वतंत्र हो गए। कुछ वर्षों के बाद भारत में तुर्कों का प्रवेश हुआ जिन्होंने द्रुतगति से भारत के विभिन्न भागों में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अरब सिंध विजय भारत और अरब के इतिहास में एक घटना मात्र थी। इसके राजनीतिक और सांस्कृतिक परिणाम

विशेष महत्वपूर्ण साबित नहीं हुए। सिंध में अरब साम्राज्य के विघ्न-भिन्न होने के तीन सौ वर्षों बाद गजनी के सुलतानों द्वारा भारत - विजय की योजना बनी। अतएव अरबों की सिंध-विजय का सम्बन्ध तुर्कों के भारत आक्रमण से जोड़कर भारत में इस्लामी राज्य के शाश्वत सम्बन्ध को नहीं बतलाया जा सकता।

— प्रकाश कि प्रकाश प्रकाश

— प्रकाश कि प्रकाश

दिनांक - 09-02-2024

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर० बी० जी० आर० कॉलेज, महाराजगंज

T.D.C PART-III, HISTORY (HON), PAPER-V

हुमायूँ जीवन पर्यन्त लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाते हुए ही उसकी मृत्यु हुई "इस कथन की समीक्षा करें। (श्रीव भाग)

हुमायूँ ने भी अब शेरशाह की शक्ति का निर्गमन आवश्यक समझा और पूर्वी भारत की ओर सैनिक अभियान आरंभ किया। शुरू में उसने चुनार के दुर्ग का घेरा डाला क्योंकि चुनार पर अंगी शेरशाह का अधिकार था और यहाँ से वह हुमायूँ का आगरा से सम्पर्क तोड़ सकता था। चुनार के घेरे में हुमायूँ ने काफी समय लगा दिया। इसका लाभ उठाकर उसने गोंड को बुरी तरह छेड़ा और रोहतास के दुर्ग पर अधिकार करके सारा खजाना वहाँ सुरक्षित कर दिया। 1538 ई० में हुमायूँ जब गोंड पहुँचा तो कुछ भी हाथ नहीं लगा और न ही वह शेरशाह को पराजित कर सका। उसकी वापसी का मार्ग अफगानों द्वारा बन्द किया जा चुका था। इस विषम परिस्थिति में हुमायूँ आठ महिनो तक गोंड में रुका रहा। कुछ इतिहासकारों का आरोप है कि इस अवधि में वह अपने विजय काजशन मनाने में व्यस्त रहा। लेकिन आर० बी० जी० रिपारी के अनुसार हुमायूँ पर लगाया गया यह आरोप गलत है। गुजरात के अनुभव को ध्यान में रखते हुए हुमायूँ ने गोंड में रुककर मुगलों की सत्ता सुदृढ़ करना आवश्यक समझा। लेकिन इस बीच बंगाल में वर्षाकाल आरंभ हो गई। हुमायूँ की सेना में महामारी फैल गई और वापसी का रास्ता हुमायूँ के लिए अत्यंत कठिन हो गया। रास्ते में उसे बार-बार अफगानों द्वारा परेशान किया गया और उनकी दयाप्राप्त युद्ध पद्धति से हुमायूँ के सैनिकों का मनोबल टूट गया। ऐसी परिस्थिति में शेरशाह ने चौसा के स्थान पर हुमायूँ का रास्ता रोक लिया। एक सप्ताह तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी रही लेकिन हुमायूँ ने युद्ध की पहल नहीं की और यह हुमायूँ की भूल थी क्योंकि उसने शेरशाह को अपने उपर पहला प्रहार करने का मौका दिया और अंततः विजयश्री शेरशाह के हाथ लगी। अगले वर्ष कन्नौज के युद्ध में उसने हुमायूँ को फिर हरा दिया। अब उसने दिल्ली पर अधिकार करके खुद को शासक घोषित किया। इसी के साथ भारत में मुगलों की सत्ता का अंत और अफगान राज की स्थापना हुई।

अधिकांश इतिहासकार हुमायूँ की असफलता के लिए स्वयं उसे ही दोषी ठहराते हैं। उनके अनुसार हुमायूँ एक अदूरदर्शी और अव्यवहारिक व्यक्ति था और उसकी नीतियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल बिल्कुल ही नहीं थीं। अपने भाइयों के बार-बार विश्वासघात करने पर भी उसने उन्हें माफ कर दिया। यह दृष्टांत एक व्यक्ति के रूप में तो उसका चरित्रिक गुण है किन्तु एक शासक के रूप में अवयुग। इसी प्रकार हुमायूँ में निर्णय लेने की क्षमता का अभाव था। इसका

प्रदर्शन उसने बहादुरशाह के विरुद्ध किए गये संघर्ष में किया और और खों के विरुद्ध भी। एक सेनानायक के रूप में भी हुमायूँ ने अनेक भूलें की, बंगाल अभियान के समय और फिर चौसा के युद्ध के समय भी। हुमायूँ ने चुनार का प्यरा डालने के समय भूल की। हुमायूँ ने एक कुशल सेनाध्यक्ष की तरह निर्णय नहीं लिये परिणामस्वरूप और खों की विजय और भी सुगम हो गई। इन सबके अतिरिक्त कुछ इतिहासकार हुमायूँ के व्यक्तिगत अवगुणों को भी उसकी असफलता के कारण मानते हैं जैसे उसकी अफीम खाने की आदत, जिसके कारण इन इतिहासकारों के अनुसार उसकी पुष्टि मन्द हो गई थी।

हुमायूँ की असफलता को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि वह केवल और खों के विरुद्ध ही अपने संघर्ष में असफल रहा, जबकि अपने अन्य प्रतिद्वन्द्वियों को उसने निश्चित रूप से पराजित किया। इसलिए हुमायूँ की असफलता के लिए केवल उसकी तथाकथित अयोग्यता को ही कारण नहीं माना जा सकता। अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विरुद्ध उसने अपनी योग्यता का निश्चित रूप से परिचय दिया। हुमायूँ की वास्तविक कठिनाई यह थी कि उसे एक ही समय में दो प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों का सामना करना पड़ा जो कि उसके राज्य के दो छोर पर स्थित थे, पश्चिम और पूर्व में। भौगोलिक बाधाओं के कारण संचार तथा आवागमन की सुविधा के उपलब्ध न होने के कारण एक ही समय में दोनों समस्याओं का समाधान कठिन था। जब वह पश्चिम भारत में व्यस्त था तब पूर्वी भारत में और खों ने अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली। इसके अतिरिक्त हुमायूँ के संबंधी भी उसके प्रति असहयोग की नीति अपनाए हुए थे। अस्करी, हिंदाल और कमरान तीनों ने ही इन विषम परिस्थितियों में उनके साथ विश्वास पाल किया और ऐसी परिस्थिति में हुमायूँ की असफलता पूर्व निश्चित थी। मई 1555 ई. के मच्छीवारा एवं जून 1555 के सरहिन्द के युद्धों में विजयप्री प्राप्त कर हुमायूँ जुलाई 1555 में दिल्ली विजय की। दुर्भाग्य उसका पीछा न छोड़ा और दिल्ली के "दीनपनाह" के पुस्तकालय की सीढ़ियों से छुटककर प्यासल हुआ और 27 जनवरी 1556 को उसकी मृत्यु हो गई।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि हुमायूँ के तथाकथित व्यक्तिगत दोषों की तुलना में उसके समक्ष प्रस्तुत समस्याओं और प्रतिकूल परिस्थितियों को ही उसकी असफलता का मुख्य कारण माना जाना न्यायोचित होगा। अतः लेनपूल का उपरोक्त कथन बहुत हद तक सच्चाई के करीब माना जा सकता है, पूर्णतः सत्य नहीं।